

इत्युक्त्वा तं समुद्धीर्य प्रायश्चित्तं यथागमम्। दत्त्वा तत्तपसश्चेति सुस्थितीकरणं व्यधात् ॥७५॥
 पुष्पडालस्ततो धीमान्गुरुवाक्यप्रसादतः। महावैराग्यभावेन तपश्चक्रे सुदुःसहम् ॥७६॥
 इत्थं चान्येन कर्त्तव्यं सुस्थितीकरणं श्रिये। केनापि कारणेनात्र पततो धर्मपर्वतात् ॥७७॥
 येऽत्र भव्याः प्रकुर्वन्ति सुस्थितीकरणं परम्। स्वमोक्षफलदस्तैश्च सिञ्चितो धर्मपादपः ॥७८॥
 शरीरसम्पदादीना-मस्थिराणां क्वचिद्भवेत्। रक्षणं शर्मदं धर्मे का कथा शर्मकोटिदे ॥७९॥
 एवं ज्ञात्वा समुत्सृज्य प्रमादं दुःखकारणम्। कार्यं तद्धि महाभव्यैः संसाराम्भोधितारणम् ॥८०॥
 श्रीमज्जैनपदाब्जयुग्ममधुलिट् श्रीवारिषेणो मुनिर्दत्त्वा तस्य मुनेस्तपोद्रिपततो हस्तावलम्बं दृढम्।
 ज्ञानध्यानरतः प्रसिद्धमहिमा प्राप्तो वनं निर्मलं दद्यान्मे भवतारकः स भगवान्नित्यं सुखं मङ्गलम् ॥८१॥

इति कथाकोशे स्थितिकरणाङ्गे श्रीवारिषेणमुनेः कथा समाप्ता।

१२. श्रीविष्णुकुमारमुनेः कथा

श्रीजिनं भारतीं साधु-पादद्वैतं सुखप्रदम्। नत्वा विष्णुकुमारस्य वात्सल्याङ्गे कथां ब्रुवे ॥१॥

आ गए। इसके बाद उन्होंने पुष्पडाल मुनि को उचित प्रायश्चित्त देकर धर्म में स्थिर किया, अज्ञान के कारण सम्यग्दर्शन से विचलित देखकर उनका धर्म में स्थितिकरण किया ॥६६-७५॥

पुष्पडाल मुनि गुरु महाराज की कृपा से अपने हृदय को शुद्ध बनाकर बड़े वैराग्य भावों से कठिन-कठिन तपश्चर्या करने लगे, भूख-प्यास की कुछ परवाह न कर परीषह सहने लगे।

इसी प्रकार अज्ञान व मोह से कोई धर्मात्मा पुरुष धर्मरूपी पर्वत से गिरता हो, तो उसे सहारा देकर न गिरने देना चाहिए। जो धर्मज्ञ पुरुष इस पवित्र स्थितिकरण अंग का पालन करते हैं, समझो कि वे स्वर्ग और मोक्ष सुख के देने वाले धर्मरूपी वृक्ष को सींचते हैं। शरीर, सम्पत्ति, कुटुम्ब आदि अस्थिर हैं, विनाशक हैं इनकी रक्षा भी जब कभी-कभी सुख देने वाली हो जाती है तब अनन्तसुख देने वाली धर्म की रक्षा का कितना महत्त्व होगा, यह सहज में जाना जा सकता है। इसलिए धर्मात्माओं को दुःख देने वाले प्रमाद को छोड़कर संसार-समुद्र से पार करने वाले पवित्र धर्म का सेवन करना चाहिए ॥७६-८०॥

श्रीवारिषेण मुनि, जो कि सदा जिनभगवान् की भक्ति में लीन रहते थे, तप पर्वत से गिरते हुए पुष्पडाल मुनि को हाथ का सहारा देकर तपश्चर्या और ध्यानाध्ययन करने के लिए वन में चले गए, वे प्रसिद्ध महात्मा आत्मसुख प्रदान कर मुझे भी संसार-समुद्र से पार करें ॥८१॥

१२. विष्णुकुमार मुनि की कथा

अनन्त सुख प्रदान करने वाले जिनभगवान् जिनवाणी और जैन साधुओं को नमस्कार कर मैं वात्सल्य अंग के पालन करने वाले श्री विष्णुकुमार मुनिराज की कथा लिखता हूँ ॥१॥

अथेह भारते क्षेत्रेऽवन्ति देशे महापुरि। उज्जयिन्यां प्रभुर्जातः श्रीवर्मा श्रीमतिप्रियः ॥२॥
 न्यायशास्त्रविचारज्ञो धार्मिको वैरिमर्दकः। प्रजानां पालने दक्षो दुष्टानां निग्रहे क्षमः ॥३॥
 बलिर्बृहस्पतिस्तस्य प्रह्लादो नमुचिस्तथा। चत्वारो मन्त्रिणश्चेति संजाता धर्मशत्रवः ॥४॥
 शोभते स्म स भूपालोऽधार्मिकैस्तैर्निसेवितः। पन्नगैर्वेष्टितो दुष्टैर्यथा चन्दनपादपः ॥५॥
 एकदाकम्पनाचार्यो लसत्संज्ञानलोचनः। प्रसिञ्चन्भव्यसस्यौघान्स्ववाक्यामृतवर्षणैः ॥६॥
 मुनीनां कामशत्रूणां संयुक्तः सप्तभिः शतैः। समागत्य तदुद्याने संस्थितः सुरपूजितः ॥७॥
 वारितो गुरुणा तेन स्वसंघो विनयान्वितः। आगते भूमिपादौ च भवद्भिर्भो यतीश्वराः ॥८॥
 सार्धं केनापि कर्त्तव्यं जल्पनं नैव साम्प्रतम्। अन्यथा सर्वसंघस्य विनाशोद्य भविष्यति ॥९॥
 तदाकर्ण्य गुरोर्वाक्यं लोकद्वयहितप्रदम्। मौनेन संस्थितास्तेऽपि मुनयो ध्यानमानसाः ॥१०॥
 शिष्यास्तेऽत्र प्रशस्यन्ते ये कुर्वन्ति गुरोर्वचः। प्रीतितो विनयोपेता भवन्त्यन्ये कुपुत्रवत् ॥११॥

अवन्तिदेश के अन्तर्गत उज्जयिनी बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध नगरी है। जिस समय का यह उपाख्यान है, उस समय उसके राजा श्रीवर्मा थे। वे बड़े धर्मात्मा थे, सब शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे, विचारशील थे, और अच्छे शूरवीर थे। वे दुराचारियों को उचित दण्ड देते और प्रजा का नीति के साथ पालन करते। सुतरां प्रजा उनकी बड़ी भक्त थी ॥२-३॥

उनकी महारानी का नाम था श्रीमती। वह भी विदुषी थी। उस समय की स्त्रियों में वह प्रधान सुन्दरी समझी जाती थी। उसका हृदय बड़ा दयालु था। वह जिसे दुःखी देखती, फिर उसका दुःख दूर करने के लिए जी जान से प्रयत्न करती। महारानी को सारी प्रजा देवी समझती थी।

श्रीवर्मा के राजमन्त्री चार थे। उनके नाम थे बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि। ये चारों ही धर्म के कट्टर शत्रु थे। इन पापी मंत्रियों से युक्त राजा ऐसे जान पड़ते थे मानों जहरीले सर्प से युक्त जैसे चन्दन का वृक्ष हो ॥४-५॥

एक दिन ज्ञानी अकम्पनाचार्य देश-विदेशों में पर्यटन कर भव्य पुरुषों को धर्मरूपी अमृत से सुखी करते हुए उज्जयिनी में आए। उनके साथ सात सौ मुनियों का बड़ा भारी संघ था। वे शहर के बाहर एक पवित्र स्थान में ठहरे। अकम्पनाचार्य को निमित्तज्ञान से उज्जयिनी की स्थिति अनिष्ट कर जान पड़ी। इसलिए उन्होंने सारे संघ से कह दिया कि देखो, राजा वगैरह कोई आवे पर आप लोग उनसे वादविवाद न कीजियेगा। नहीं तो सारा संघ बड़े कष्ट में पड़ जायेगा, उस पर घोर उपसर्ग आएगा। गुरु की हितकर आज्ञा को स्वीकार कर सब मुनि मौन के साथ ध्यान करने लगे। सच है— ॥६-१०॥

वे शिष्य प्रशंसा के पात्र हैं, जो विनय और प्रेम के साथ अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं। इसके विपरीत चलने वाले कुपुत्र के समान निन्दा के पात्र हैं ॥११॥

तदा पौराः समादाय पूजाद्रव्यं मनोहरम्। निर्गता वन्दनाभक्त्या तेषामानन्दनिर्भराः ॥१२॥
 स्वप्रसादस्थितो राजा श्रीवर्मा वीक्ष्य ताञ्जगौ। अकालेऽपि क्व यात्येष पौरः पुष्पादिसंयुतः ॥१३॥
 तच्छ्रुत्वा मंत्रिणः प्राहुर्दुष्टास्ते भूपतिं प्रति। देवोद्याने समायाता नित्यं नगना दिगम्बराः ॥१४॥
 तत्र प्रयाति लोकोयं तदाकर्ण्य नृपोवदत्। तान्दृष्टुं वयमप्युच्चैर्गच्छामः कौतुकीमयान् ॥१५॥
 इत्युक्त्वा मंत्रिभिः सार्धं गत्वा तत्र महीपतिः। तान्विलोक्य महाध्यान-सम्पन्नान्हृष्टमानसः ॥१६॥
 प्रत्येकं भक्तितस्तेषां स चक्रे वन्दनां मुदा। केनापि मुनिना नैव दत्तमाशीर्वचस्तदा ॥१७॥
 महाध्यानेन तिष्ठन्ति निस्पृहा मुनयस्तराम्। स कुर्वन्संस्तुतिं चेति व्याघुट्य चलितो नृपः ॥१८॥
 तदा ते पापिनः प्राहुर्मंत्रिणो द्वेषिणः सताम्। एते देव किमप्यत्र वक्तुं जानन्ति नैव च ॥१९॥
 ततो मौनं समादाय संस्थिताः कपटेन हि। हास्यं कृत्वेति तेनैव निर्गता भूभुजा समम् ॥२०॥
 इन्द्रप्रतीन्द्रनागेन्दैर्वन्दितानां मुनीशिनाम्। निन्दां कुर्वन्ति ये सत्यं दुर्जना भाषणोपमाः ॥२१॥
 ततो मार्गे समालोक्य चर्या कृत्वा मुनीश्वरम्। आगच्छन्तं जगुस्तेऽपि श्रुतसागरसंज्ञकम् ॥२२॥

अकम्पनाचार्य के आने के समाचार शहर के लोगों को मालूम हुए। वे पूजा द्रव्य लेकर बड़ी भक्ति के साथ आचार्य की वन्दना को जाने लगे। आज एकाएक अपने शहर में आनन्द की धूमधाम देखकर महल पर बैठे हुए श्रीवर्मा ने मंत्रियों से पूछा—ये सब लोग आज ऐसे सजधज कर कहाँ जा रहे हैं? उत्तर में मंत्रियों ने कहा—महाराज, सुना जाता है कि अपने शहर में नंगे जैन साधु आए हुए हैं। ये सब उनकी पूजा के लिए जा रहे हैं। राजा ने प्रसन्नता के साथ कहा—तब तो हमें भी चलकर उनके दर्शन करना चाहिए। वे महापुरुष होंगे। यह विचार कर राजा भी मंत्रियों के साथ आचार्य के दर्शन करने को गए। उन्हें आत्मध्यान में लीन देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने क्रम से एक-एक मुनि को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। सब मुनि अपने आचार्य की आज्ञानुसार मौन रहे। किसी ने भी उन्हें धर्मवृद्धि नहीं दी। राजा उनकी वन्दना कर वापस महल लौट चले। लौटते समय मंत्रियों ने उनसे कहा—महाराज, देखा साधुओं को? बेचारे बोलना तक भी नहीं जानते, सब नितान्त मूर्ख हैं। यही तो कारण है कि सब मौनी बैठे हुए हैं। उन्हें देखकर सर्व साधारण तो यह समझेंगे कि ये सब आत्मध्यान कर रहे हैं, बड़े तपस्वी हैं पर यह इनका ढोंग है। अपनी सब पोल न खुल जाये, इसलिए उन्होंने लोगों को धोखा देने को यह कपटजाल रचा है। महाराज, ये दाम्भिक हैं। इस प्रकार त्रैलोक्यपूज्य और परम शान्त मुनिराजों की निन्दा करते हुए ये मलिनहृदयी मंत्री राजा के साथ लौट के आ रहे थे कि रास्ते में इन्हें एक मुनि मिल गए, जो कि शहर से आहार करके लौट रहे थे, इन पापियों ने उनकी हँसी की, महाराज, देखिए वह एक बैल और पेट भरकर चला आ रहा है। मुनि ने मंत्रियों के निन्दा वचनों को सुन लिया। सुनकर भी उनका कर्तव्य था कि वे शान्त रह जाते, पर वे निन्दा न सह सकें। कारण वे आहार के लिए शहर में चले गए थे, इसलिए उन्हें अपने आचार्य की आज्ञा मालूम न थी। मुनि ने यह

बलीवर्दः समायाति पूर्णकुक्षिस्तु नूतनः। तदाकर्ण्य मुनीन्द्रेण ज्ञात्वा वादोद्धतांश्च तान् ॥२३॥
 स्याद्वादवादिना तेन द्विजास्ते ज्ञानगर्विताः। निर्जिता भूपसान्निध्ये वाक्कल्लोलभरैर्निजैः ॥२४॥
 एकेन तेन सर्वेऽपि निर्जिताश्चेति नाद्भुतम्। एको हि तिमिरश्रेणि-प्रक्षये भास्करः प्रभुः ॥२५॥
 समागत्य गुरोः पार्श्वे स्ववृत्तान्तं जगौ हि सः। तच्छ्रुत्वा च गुरुः प्राह हा कृतं भो विरूपकम् ॥२६॥
 हतस्त्वया स्वहस्तेन संघोयं शर्मदः सताम्। वादस्थाने त्वमेकाकी गत्वा रात्रौ यदि ध्रुवम् ॥२७॥
 कायोत्सर्गेण सद्भ्यान् करोषि परमार्थतः। संघस्य जीवितं ते च विशुद्धिः संभवेत्तदा ॥२८॥
 स धीरो मेरुवद्गाढं मुनिः श्रीश्रुतसागरः। श्रुत्वेति संघरक्षार्थं गत्वा तत्र तथा स्थितः ॥२९॥
 तदा ते विप्रकाः सर्वे मानभङ्गेन लज्जिताः। मुनीनां मारणार्थं च रात्रौ गेहाद्विनिर्गताः ॥३०॥
 मार्गे तं मुनिमालोक्य कायोत्सर्गेण संस्थितम्। येनास्माकं कृतो मान-भङ्गः सोऽयं तु हन्यते ॥३१॥
 इत्यालोच्य मुनेस्तस्य वधार्थं दुष्टमानसाः। खड्गानुत्थापयामासुश्चत्वारश्चैकवारतः ॥३२॥

समझ कर, कि इन्हें अपनी विद्या का बड़ा अभिमान है, उसे मैं चूर्ण करूँगा, कहा—तुम व्यर्थ क्यों किसी की बुराई करते हो? यदि तुममें कुछ विद्या हो, आत्मबल हो, तो मुझ से शास्त्रार्थ करो। फिर तुम्हें जान पड़ेगा कि बैल कौन है? भला वे भी तो राजमंत्री थे, उस पर भी दुष्टता उनके हृदय में कूट-कूटकर भरी हुई थी; फिर वे कैसे एक अकिंचन साधु के वचनों को सह सकते थे? उन्होंने कह तो दिया कि हम ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। अभिमान में आकर उन्होंने कह तो दिया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे पर जब शास्त्रार्थ हुआ तब उन्हें जान पड़ा कि शास्त्रार्थ करना बच्चों का सा खेल नहीं है। एक ही मुनि ने अपने स्याद्वाद के बल से बात की बात में चारों मंत्रियों को पराजित कर दिया। सच है—एक ही सूर्य सारे संसार के अन्धकार को नष्ट करने के लिए समर्थ है ॥१२-२५॥

विजय लाभ कर श्रुतसागर मुनि अपने आचार्य के पास आए। उन्होंने रास्ते की सब घटना आचार्य से ज्यों की त्यों कह सुनाई सुनकर आचार्य खेद के साथ बोले—हाय! तुमने बहुत ही बुरा किया, जो उनसे शास्त्रार्थ किया। तुमने अपने हाथों से सारे संघ का घात किया, संघ की अब कुशल नहीं है। अस्तु, जो हुआ, अब यदि तुम सारे संघ की जीवन रक्षा चाहते हो, तो पीछे जाओ और जहाँ मंत्रियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ है, वहीं जाकर कायोत्सर्ग ध्यान करो। आचार्य की आज्ञा को सुनकर श्रुतसागर मुनिराज जरा भी विचलित नहीं हुए। वे संघ की रक्षा के लिए उसी समय वहाँ से चल दिये और शास्त्रार्थ की जगह पर आकर मेरु की तरह निश्चल हो बड़े धैर्य के साथ कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे ॥२६-२९॥

शास्त्रार्थ कर मुनि से पराजित होकर मंत्री बड़े लज्जित हुए। अपने मानभंग का बदला चुकाने का विचार कर मुनिवध के लिए रात्रि समय वे चारों शहर से बाहर हुए। रास्ते में श्रुतसागर मुनि ध्यान करते हुए मिले। पहले उन्होंने अपने मानभंग करने वाले ही को परलोक पहुँचा देना चाहा। उन्होंने मुनि की गर्दन काटने को अपनी तलवार को म्यान से खींचा और एक ही साथ उनका काम तमाम करने

तदा तत्पुण्यमाहात्म्यात्प्रकम्पितनिजासना। तथैव स्तंभयामास मंत्रिणः पुरदेवता ॥३३॥
 प्रभातसमये श्रुत्वा लोकेभ्यो भूपतिस्तदा। मंत्रिणां दुश्चरित्रं तत्संदृष्ट्वा कीलितांश्च तान् ॥३४॥
 बाधा निरपराधानां येऽत्र कुर्वन्ति पापिनः। प्रयान्ति नरकं घोरं दुस्सहं ते दुराशयाः ॥३५॥
 सामान्यजन्तुहन्तॄणां मुखं दृष्टुं न युज्यते। किं पुनस्त्रिजगत्पूज्य-मुनिपीडाविधायिनाम् ॥३६॥
 इत्युक्त्वा कुलमंत्रित्वाद्विप्रत्वाच्च न मारिताः। कोपेन कारयित्वाशु गर्दभारोहणं च तान् ॥३७॥
 देशान्निर्घाटयामास श्रीवर्मा न्यायशास्त्रवित्। युक्तं पापप्रयुक्तानां जनानामीदृशी गतिः ॥३८॥
 तं प्रभावं समालोक्य सर्वे भव्यजनास्तदा। संचक्रुः परमानन्दैर्जयकोलाहलध्वनिम् ॥३९॥
 अथास्ति हस्तिनागाख्ये पुरे राजा सुधार्मिकः। महापद्मो गतच्छद्वा राज्ञी लक्ष्मीमती सती ॥४०॥
 बभूवतुस्तयोः पुत्रौ पद्मो विष्णुश्च शर्मदौ। एकदा स महापद्मो राजा राजीवलोचनः ॥४१॥

के विचार से उन पर वार करना चाहा कि, इतने में मुनि के पुण्य प्रभाव से पुरदेवी ने आकर उन्हें तलवार उठाये हुए ही कील दिये ॥३०-३४॥

प्रातःकाल होते ही बिजली की तरह सारे शहर में मंत्रियों की दुष्टता का हाल फैल गया। सब शहर उन्हें देखने को आया। राजा भी आए। सबने एक स्वर से उन्हें धिक्कारा। है भी तो ठीक, जो पापी लोग निरपराधों को कष्ट पहुँचाते हैं वे इस लोक में भी घोर दुःख उठाते हैं और परलोक में नरकों के असह्य दुःख सहते हैं। राजा ने उन्हें बहुत धिक्कार कर कहा-पापियों, जब तुमने मेरे सामने इन निर्दोष और संसार मात्र का उपकार करने वाले मुनियों की निन्दा की थी, तब मैं तुम्हारे विश्वास पर निर्भर रहकर यह समझा था कि संभव है मुनि लोग ऐसे ही हों, पर आज मुझे तुम्हारी नीचता का ज्ञान हुआ, तुम्हारे पापी हृदय का पता लगा। तुम इन्हीं निर्दोष साधुओं की हत्या करने को आए थे न? पापियों, तुम्हारा मुख देखना भी महापाप है। तुम्हें तुम्हारे इस घोर कर्म का उपयुक्त दण्ड तो यही देना चाहिए था कि जैसा तुम करना चाहते थे, वही तुम्हारे लिए किया जाता। पर पापियों, तुम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारी कितनी ही पीढ़ियाँ मेरे यहाँ मंत्री पद पर प्रतिष्ठा पा चुकी हैं इसलिए उसके लिहाज से तुम्हें अभय देकर अपने नौकरों को आज्ञा करता हूँ कि वे तुम्हें गधों पर बैठाकर मेरे देश की सीमा से बाहर कर दें। राजा की आज्ञा का उसी समय पालन हुआ। चारों मन्त्री देश से निकलवा दिये गए। सच है-पापियों की ऐसी दशा होना उचित ही है ॥३५-३८॥

धर्म के ऐसे प्रभाव को देखकर लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहा। वे अपने हृदय में बढ़ते हुए हर्ष के वेग को रोकने में समर्थ नहीं हुए। उन्होंने जयध्वनि के मारे आकाश पाताल को एक कर दिया। मुनिसंघ का उपद्रव टला। सबके चित्त स्थिर हुए। अकम्पनाचार्य भी उज्जयिनी से विहार कर गए ॥३९॥

हस्तिनापुर नाम का एक शहर है। उसके राजा हैं महापद्म, उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। उसके पद्म और विष्णु नाम के दो पुत्र हुए ॥४०-४१॥

त्रिधा वैराग्यमासाद्य जिनपादाब्जयो रतः। दत्त्वा राज्यं सुधीर्ज्येष्ठ-पुत्राय परमार्थतः ॥४२॥
 श्रुतसागरचन्द्राख्यं मुनिं नत्वा जगद्धितम्। सार्धं विष्णुकुमारेण जैनीं दीक्षां गृहीतवान् ॥४३॥
 श्रीमद्विष्णुकुमारोसौ मुनिः सद्भयानतत्परः। कुर्वस्तपो जिनेन्द्रोक्तं संजातो विक्रयर्द्धिवाक् ॥४४॥
 तदा पद्ममहीभर्तुः सद्राज्यं कुर्वतः सुखम्। विप्रास्ते तु समागत्य संजाता मंत्रिणः पुनः ॥४५॥
 अन्यदा दुर्बलं वीक्ष्य पद्मराजानमब्रवीत्। बलिः किं देव दौर्बल्य-कारणं च प्रभुर्जगौ ॥४६॥
 अस्ति कुंभपुरे राजा नाम्ना सिंहबलो महान्। दुष्टो दुर्गबलेनासौ मद्देशं हन्ति दारुणः ॥४७॥
 ततो नृपाज्ञया सोपि बलिर्मन्त्री स्वबुद्धितः। गत्वा दुर्गाश्रयं भङ्क्त्वा गृहीत्वा च महारिपुम् ॥४८॥
 आगत्य नृपतिं प्राह सोयं सिंहबलः प्रभो। इत्याकर्ण्य जगौ राजा पद्माख्यो हृष्टमानसः ॥४९॥
 प्रार्थय त्वं वरं धीर यन्तुभ्यं रोचते तराम्। तेनोक्तं प्रार्थयिष्यामि तदा मे दीयतां विभो ॥५०॥

एक दिन राजा संसार की दशा पर विचार कर रहे थे। उसकी अनित्यता और निस्सारता देखकर उन्हें बहुत वैराग्य हुआ। उन्हें संसार दुःखमय दिखने लगा। वे उसी समय अपने बड़े पुत्र पद्म को राज्य देकर अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमार के साथ वन में चले गए और श्रुतसागर मुनि के पास पहुँचकर दोनों पिता-पुत्र ने दीक्षा ग्रहण कर ली। विष्णुकुमार बालपने से ही संसार से विरक्त थे इसलिए पिता के रोकने पर भी वे दीक्षित हो गए। विष्णुकुमार मुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे। कुछ दिनों बाद तपश्चर्या के प्रभाव से उन्हें विक्रियाच्छि प्राप्त हो गई ॥४२-४४॥

पिता के दीक्षित हो जाने पर हस्तिनापुर का राज्य पद्मराज करने लगे। उन्हें सब कुछ होने पर भी एक बात का बड़ा दुःख था। वह यह कि, कुंभपुर का राजा सिंहबल उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया करता था। उनके देश में अनेक उपद्रव किया करता था। उसके अधिकार में एक बड़ा भारी सुदृढ़ किला था। इसलिए वह पद्मराज की प्रजा पर एकाएक धावा मारकर अपने किले में जाकर छुप जाता है। तब पद्मराज उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर पाते थे। इस कष्ट की उन्हें सदा चिन्ता रहा करती थी ॥४५-४७॥

इसी समय श्रीवर्मा के चारों मंत्री उज्जयिनी से निकलकर कुछ दिनों बाद हस्तिनापुर की ओर आ निकले। उन्हें किसी तरह राजा के इस दुःख सूत्र का पता लग गया। वे राजा से मिले और उन्हें चिन्ता से निर्मुक्त करने का वचन देकर कुछ सेना के साथ सिंहबल पर जा चढ़े और अपनी बुद्धिमानी से किले को तोड़कर सिंहबल को उन्होंने बाँध लिया और लाकर पद्मराज के सामने उपस्थित कर दिया। पद्मराज उनकी वीरता और बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें अपना मंत्री बनाकर कहा—कि तुमने मेरा उपकार किया है। तुम्हारा मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। यद्यपि उसका प्रतिफल नहीं दिया जा सकता, तब भी तुम जो कहो वह मैं तुम्हें देने को तैयार हूँ। उत्तर में बलि नाम के मंत्री ने कहा—प्रभो, आपकी हम पर कृपा है, तो हमें सब कुछ मिल चुका। इस पर भी आपका आग्रह है, तो उसे हम अस्वीकार भी नहीं कर सकते। अभी हमें कुछ आवश्यकता नहीं है। जब समय होगा तब आपसे प्रार्थना करेंगे ही ॥४८-५०॥

अथैकदा समागत्य मुनिवृन्दैः समन्वितः। सुधीरकम्पनाचार्यो भव्यौघान्प्रतिबोधयन् ॥५१॥
 संस्थितः पुरबाह्येसौ पौरास्तत्र महोत्सवैः। तान्वन्दितुं गताः सर्वे पूजाद्रव्यैः प्रमोदतः ॥५२॥
 तदाकर्ण्य द्विजास्तेऽपि चक्रुश्चिन्तां स्वचेतसि। एतेषां भाक्तिको राजा भीत्वा मंत्रं विधाय च ॥५३॥
 बलिः प्राह ततो भूपं दीयतां मे प्रभो वरम्। राज्यं सप्तदिनान्येव भवद्भिः सत्यसंयुतैः ॥५४॥
 ततोसौ पद्मभूपालो वंचितस्तैः कुमन्त्रिभिः। दत्त्वा राज्यं निजं तस्मै स्वयं वान्तःपुरे स्थितः ॥५५॥
 तैस्तदा राज्यमादाय कपटेन शठद्विजैः। मुनीनां मारणार्थं च वृत्त्या संवेष्ट्य तान्मुनः ॥५६॥

इसी समय श्री अकम्पनाचार्य अनेक देशों में विहार करते हुए और धर्मोपदेश द्वारा संसार के जीवों का हित करते हुए हस्तिनापुर के बगीचे में आकर ठहरे। सब लोग उत्सव के साथ उनकी वन्दना करने को गए। अकम्पनाचार्य के आने का समाचार राजमंत्रियों को मालूम हुआ। मालूम होते ही उन्हें अपने अपमान की बात याद हो आई उनका हृदय प्रतिहिंसा से उद्विग्न हो उठा। उन्होंने परस्पर में विचार किया कि समय बहुत उपयुक्त है, इसलिए बदला लेना ही चाहिए। देखो न, इन्हीं दुष्टों के द्वारा अपने को कितना दुःख उठाना पड़ा था? सबके हम धिक्कार पात्र बने और अपमान के साथ देश से निकाले गए। पर हाँ अपने मार्ग में एक काँटा है। राजा इनका बड़ा भक्त है। वह अपने रहते हुए इनका अनिष्ट कैसे होने देगा? इसके लिए कुछ उपाय सोच निकालना आवश्यक है। नहीं तो ऐसा न हो कि ऐसा अच्छा समय हाथ से निकल जाये? इतने में बलि मंत्री बोल उठा कि, इसकी आप चिन्ता न करें ॥५१-५३॥

अब सिंहबल के पकड़ लाने का पुरस्कार राजा से पाना बाकी है, उसकी ऐवज में उससे सात दिन का राज्य ले लेना चाहिए। फिर जैसा हम करेंगे वही होगा। राजा को उसमें दखल देने का कुछ अधिकार न रहेगा। यह प्रयत्न सबको सर्वोत्तम जान पड़ा। बलि उसी समय राजा के पास पहुँचा और बड़ी विनय से बोला—महाराज, आप पर हमारा एक पुरस्कार बाकी है। आप कृपाकर अब उसे दीजिये। इस समय उससे हमारा बड़ा उपकार होगा। राजा उसका कूट कपट न समझ और यह विचार कर, कि इन लोगों ने मेरा बड़ा उपकार किया था, अब उसका बदला चुकाना मेरा कर्तव्य है, बोला—बहुत अच्छा, जो तुम्हें चाहिए वह माँग लो, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारे ऋण से उन्मृष्ट होने का यत्न करूँगा। बलि बोला—महाराज, यदि आप वास्तव में ही हमारा हित चाहते हैं, तो कृपा करके सात दिन के लिए अपना राज्य हमें प्रदान कीजिए ॥५४॥

राजा सुनते ही अवाक् रह गया। उसे किसी बड़े भारी अनर्थ की आशंका हुई पर अब वश ही क्या था? उसे वचनबद्ध होकर राज्य दे देना पड़ा। राज्य के प्राप्त होते ही उनकी प्रसन्नता का कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने मुनियों के मारने के लिए यज्ञ का बहाना बनाकर षड्यंत्र रचा जिससे कि सर्वसाधारण न समझ सकें ॥५५॥

मुनियों को बीच में रखकर यज्ञ के लिए एक बड़ा भारी मंडप तैयार किया गया। उनके चारों

कारयित्वा तृणैः काष्ठैः पापिष्ठैः मण्डपं ततः। वेदवाक्यैः समारब्धो यज्ञकः पशुघातकः ॥५७॥
 तदा छागोद्भवैर्धूमै-रुत्थितैः खर्परादभिः। पीडिताः मुनयस्तेऽपि सन्यासं द्विविधं दृढम् ॥५८॥
 गृहीत्वा संस्थिताश्चित्ते स्मरन्तः परमात्मनः। शत्रुमित्रसमाः सर्वे निश्चला मेरुवत्तराम् ॥५९॥
 मिथिलायामथ ज्ञानी श्रुतसागरचन्द्रवाक्। मुनीन्द्रो व्योम्नि नक्षत्रं श्रवणं श्रमणोत्तमः ॥६०॥
 कम्पमानं समालोक्यं हाहाकारं विधाय च। उपसर्गो मुनीन्द्राणां वर्तते महतां महान् ॥६१॥
 इति प्राह तदाकर्ण्य पृष्ठोसौ क्षुल्लकेन च। पुष्पदन्तेन भो देव कुत्र केषां गुरुर्जगौ ॥६२॥
 हस्तिनागपुरेऽकम्प-नाचार्यादिमुनीशिनाम्। उपसर्गं कथं देव संक्षयं याति धीधनः ॥६३॥

ओर काष्ठ ही काष्ठ रखवा दिया गया। हजारों पशु इकट्ठे किए गए। यज्ञ आरम्भ हुआ। वेदों के जानकार बड़े-बड़े विद्वान् यज्ञ कराने लगे। वेदध्वनि से यज्ञमण्डप गूँजने लगा। बेचारे निरपराध पशु बड़ी निर्दयता से मारे जाने लगे। उनकी आहुतियाँ दी जाने लगीं। देखते-देखते दुर्गन्धित धुएँ से आकाश परिपूर्ण हुआ। मानों इस महापाप को न देख सकने के कारण सूर्य अस्त हुआ। मनुष्यों के हाथ से राज्य राक्षसों के हाथों में गया ॥५६-५८॥

सारे मुनिसंघ पर भयंकर उपसर्ग हुआ परन्तु उन शान्ति की मूर्तियों ने इसे अपने किए कर्मों का फल समझकर बड़ी धीरता के साथ सहना आरम्भ किया। वे मेरु समान निश्चल रहकर एक चित्त से परमात्मा का ध्यान करने लगे। सच है-जिन्होंने अपने हृदय को खूब उन्नत और दृढ़ बना लिया है जिनके हृदय में निरन्तर यह भावना बनी रहती है- ॥५९॥

अरि मित्र, महल मसान, कंचन काँच, निन्दन श्रुतिकरन।

अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन॥

वे क्या कभी ऐसे उपसर्गों से विचलित होते हैं? पाण्डवों को शत्रुओं ने लोहे के गरम-गरम आभूषण पहना दिये। अग्नि की भयानक ज्वाला उनके शरीर को भस्म करने लगी। पर वे विचलित नहीं हुए। धैर्य के साथ उन्होंने सब उपसर्ग सहा। जैन साधुओं का यही मार्ग है कि वे आए हुए कष्टों को शान्ति से सहे और वे ही यथार्थ साधु हैं, जिनका हृदय दुर्बल है, जो रागद्वेषरूपी शत्रुओं को जीतने के लिए ऐसे कष्ट नहीं सह सकते, दुःखों के प्राप्त होने पर समभाव नहीं रख सकते, वे न तो अपने आत्महित के मार्ग में आगे बढ़ पाते हैं और न वे साधुपद स्वीकार करने के योग्य हो सकते हैं।

मिथिला में श्रुतसागर मुनि को निमित्तज्ञान से इस उपसर्ग का हाल मालूम हुआ। उनके मुँह से बड़े कष्ट के साथ वचन निकले-हाय! हाय!! इस समय मुनियों पर बड़ा उपसर्ग हो रहा है। वहीं एक पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक भी उपस्थित थे। उन्होंने मुनिराज से पूछा-प्रभो, यह उपसर्ग कहाँ हो रहा है? उत्तर में श्रुतसागर मुनि बोले-हस्तिनापुर में सात सौ मुनियों का संघ ठहरा हुआ है। उसके संरक्षक अकम्पनाचार्य हैं। उस सारे संघ पर पापी बलि के द्वारा यह उपसर्ग किया जा रहा है।

गुरुर्जगाद भो वत्स भूमिभूषणपर्वते। मुनिर्विष्णुकुमारोऽस्ति विक्रियर्द्धिप्रमण्डितः ॥६४॥
 स तं निवारयत्येव मुनीनामुपसर्गकम्। तच्छ्रुत्वा क्षुल्लको गत्वा सर्वं तस्य मुनेर्जगौ ॥६५॥
 ततो विष्णुकुमारेण विक्रियर्द्धिर्ममास्ति च। संचिन्त्येति परिक्षार्थं हस्तः स्वस्य प्रसारितः ॥६६॥
 तदासौ भूधरं भित्वा समुद्रे पतितः करः। विक्रियर्द्धिं ततो ज्ञात्वा मुनिः सद्धर्मवत्सलः ॥६७॥
 गत्वा नागपुरं पद्मं भूपतिं प्रति चोक्तवान्। अहो भ्रातस्त्वया कष्टं किमारब्धं मुनीशिनाम् ॥६८॥
 अस्मत्कुले पुरा केन निर्मितं नैव चेदृशम्। मुनीनामुपसर्गं रे कथं कारयसि त्वकम् ॥६९॥
 शिष्टानां पालनं दुष्ट-निग्रहं यः करोत्यहो। कथ्यते स महीनाथो न पुनर्मुनिघातकः ॥७०॥
 साधूनामत्र सन्तापो कष्टदो भवति ध्रुवम्। सुष्ठु तप्तं यथा तोयं दहत्यङ्गं न संशयः ॥७१॥
 कुरु त्वं शान्तिमेतेषां यावत्ते नागतापदा। तदाकर्ण्य प्रभुः प्राह किं करोमि महामुने ॥७२॥
 मया सप्त दिनान्येव स्वराज्यं बलिमंत्रिणे। दत्तं ततो भवान्नेव युक्तमुच्चैः करोतु च ॥७३॥

क्षुल्लक ने फिर पूछा-प्रभो, कोई ऐसा उपाय भी है, जिससे यह उपसर्ग दूर हो?

मुनि ने कहा-हाँ उसका एक उपाय है। भूमि भूषण पर्वत पर श्री विष्णुकुमार मुनि को विक्रियार्द्धि प्राप्त हो गई है, वे अपनी ऋद्धि के बल से उपसर्ग को रोक सकते हैं ॥६०-६५॥

पुष्पदन्त फिर एक क्षणभर भी वहाँ न ठहरे और जहाँ विष्णुकुमार मुनि तपश्चर्या कर रहे थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने सब हाल विष्णुकुमार मुनि से कह सुनाया। विष्णुकुमार को ऋद्धि प्राप्त होने की पहले खबर नहीं हुई थी। पर जब पुष्पदन्त के द्वारा उन्हें मालूम हुआ, तब उन्होंने परीक्षा के लिए एक हाथ पसारकर देखा। पसारते ही उनका हाथ बहुत दूर तक चला गया। उन्हें विश्वास हुआ। वे उसी समय हस्तिनापुर आए और अपने भाई से बोले-भाई, आप किस नींद में सोते हुए हो? जानते हो, शहर में कितना बड़ा भारी अनर्थ हो रहा है? अपने राज्य में तुमने ऐसा अनर्थ क्यों होने दिया? क्या पहले किसी ने भी अपने कुल में ऐसा घोर अनर्थ आज तक किया है? हाय! धर्म के अवतार, परम शान्त और किसी से कुछ लेते देते नहीं, उन मुनियों पर यह अत्याचार? और वह भी तुम सरीखे धर्मात्माओं के राज्य में? खेद! भाई, राजाओं का धर्म तो यह कहा गया है कि वे सज्जनों की, धर्मात्माओं की रक्षा करें और दुष्टों को दण्ड दें। पर आप तो बिल्कुल इससे उल्टा कर रहे हैं। समझते हो, साधुओं का सताना ठीक नहीं। ठण्डा जल भी गरम होकर शरीर को जला डालता है इसलिए जब तक आपत्ति तुम पर न आवे, उसके पहले ही उपसर्ग शान्ति करवा दीजिये ॥६६-७१॥

अपने भाई का उपदेश सुनकर पद्मराज बोले-मुनिराज, मैं क्या करूँ? मुझे क्या मालूम था कि ये पापी लोग मिलकर मुझे ऐसा धोखा देंगे? अब तो मैं बिल्कुल विवश हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। सात दिन तक जैसा कुछ ये करेंगे वह सब मुझे सहना होगा क्योंकि मैं वचनबद्ध हो चुका हूँ। अब तो आप ही किसी उपाय द्वारा मुनियों का उपसर्ग दूर कीजिए। आप इसके लिए समर्थ भी हैं और सब

किं कथ्यते मया तत्र भवतां कार्यशालिनाम्। प्रोल्लसद्भास्करे भाति किं दीपेनाल्पतेजसा ॥७४॥
 ततो विष्णुमुनिः सोपि विक्रयर्द्धिप्रभावतः। वामनब्राह्मणस्योच्चै-रूपमादाय लीलया ॥७५॥
 कुर्वन्वेदध्वनिं गत्वा यज्ञस्थाने स्थितस्तदा। बलिस्तं वीक्ष्य सन्तुष्टः प्रोवाच वचनं शुभम् ॥७६॥
 यत्तुभ्यं रोचते विप्र तन्मया दीयते वद। स प्राह वेदवेदाङ्ग-पारगो वामनो द्विजः ॥७७॥
 देहि भो भूपते मह्यं भूमेः पादत्रयं मुदा। किं त्वया याचितं विप्र बहु प्रार्थय वाञ्छितम् ॥७८॥
 लोकैः प्रेर्यमाणोपि याचते स्म तदेव सः। दानेनैतेन भो देव पूर्यतामिति साम्प्रतम् ॥७९॥
 तदा बलिः प्रभुर्विप्र त्वं गृहाण निजेच्छया। भूमेः पादत्रयं चेति दत्तवांस्तत्करे जलम् ॥८०॥

जानते हैं। उसमें मेरा दखल देना तो ऐसा है जैसा सूर्य को दीपक दिखलाना। शीघ्रता कीजिए। विलम्ब करना उचित नहीं ॥७२-७४॥

विष्णुकुमार मुनि ने विक्रियाऋद्धि के प्रभाव से बामन ब्राह्मण का वेष बनाया और बड़ी मधुरता से वेदध्वनि का उच्चारण करते हुए वे यज्ञमंडप में पहुँचे। उनका सुन्दर स्वरूप और मनोहर वेदोच्चार सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए। बलि तो उन पर इतना मुग्ध हुआ कि उसके आनन्द का कुछ पार नहीं रहा। उसने बड़ी प्रसन्नता से उनसे कहा—महाराज, आपने पधारकर मेरे यज्ञ की अपूर्व शोभा कर दी। मैं बहुत खुश हुआ। आपको जो इच्छा हो, माँगिए। इस समय मैं सब कुछ देने को समर्थ हूँ ॥७५-७७॥

विष्णुकुमार बोले—मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मुझे अपनी जैसी कुछ स्थिति है, उसमें सन्तोष है। मुझे धन-दौलत की कुछ आवश्यकता नहीं। पर आपका जब इतना आग्रह है, तो आपको असन्तुष्ट करना भी मैं नहीं चाहता। मुझे केवल तीन पग पृथ्वी की आवश्यकता है। यदि आप कृपा करके उतनी भूमि मुझे प्रदान कर देंगे तो मैं उसमें टूटी-फूटी झोंपड़ी बनाकर रह सकूँगा। स्थान की निराकुलता से मैं अपना समय वेदाध्ययनादि में बड़ी अच्छी तरह बिता सकूँगा। बस, इसके सिवा मुझे और कुछ इच्छा नहीं है ॥७८॥

विष्णुकुमार की यह तुच्छ याचना सुनकर और-और ब्राह्मणों को उनकी बुद्धि पर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने कहा भी कृपानाथ, आपको थोड़े में ही सन्तोष था, तब भी आप का यह कर्तव्य तो था कि आप बहुत कुछ माँग कर अपने जाति भाईयों का ही उपकार करते? उसमें आपका क्या बिगड़ जाना था?

बलि ने भी उन्हें समझाया और कहा कि आपने तो कुछ भी नहीं माँगा। मैं तो यह समझा था कि आप अपनी इच्छा से माँगते हैं, इसलिए जो कुछ माँगेंगे वह अच्छा ही माँगेंगे; परन्तु आपने तो मुझे बहुत ही हताश किया। यदि आप मेरे वैभव और मेरी शक्ति के अनुसार माँगते तो मुझे बहुत सन्तोष होता। महाराज, अब भी आप चाहें तो और भी अपनी इच्छानुसार माँग सकते हैं। मैं देने को प्रस्तुत हूँ ॥७९॥

विष्णुकुमार बोले—नहीं, मैंने जो कुछ माँगा है, मेरे लिए वही बहुत है। अधिक चाह नहीं। आपको देना ही है तो और बहुत से ब्राह्मण मौजूद हैं; उन्हें दीजिए। बलि ने कहा कि जैसी आपकी

ततः कोपेन तेनोच्चै-रेकः पादः सुराचले। द्वितीयश्चरणो दत्तो मानुषोत्तरपर्वते ॥८१॥
 तृतीयश्चरणश्चेति विना स्थानं न चालितः। आकाशे तु तदा क्षोभः संजातो भुवनत्रये ॥८२॥
 कम्पिताः पर्वताः सर्वे ससमुद्राः सभूमयः। प्रापुः संघट्टनं व्योम्नि विमानाश्चकिताः सुराः ॥८३॥
 क्षम्यतां क्षम्यतां देव भीत्वा चेति सुरासुराः। समागत्य बलिं बध्वा पूजयन्ति स्म तत्क्रमो ॥८४॥
 भक्त्या तदा मुनीन्द्राणामुपसर्गं विशिष्टधीः। शीघ्रं निवारयामास मुनिर्विष्णुकुमारवाक् ॥८५॥
 स पद्मोपि महाराजो भयादागत्य वेगतः। विष्णोर्मुनेस्तथा तेषां पतितश्चरणद्वये ॥८६॥
 मंत्रिणश्चेति चत्वारो मुक्त्वा दुष्टाशयं तदा। विष्णोरकम्पनाचार्य-मुनीनां पादपद्मयोः ॥८७॥
 नत्वा सद्भावतस्त्यक्त्वा कष्टं मिथ्यामतं द्रुतम्। संजाताः श्रावकाः सर्वे जैनधर्मपरायणाः ॥८८॥
 तथा विष्णुकुमारस्य पादपूजार्थमद्भुतम्। दत्तं वीणात्रयं देवैर्लोकानां शर्मदायकम् ॥८९॥
 एवं भव्यात्मना भक्त्या मुन्यादीनां सुखप्रदम्। वात्सल्यं सर्वथा कार्यं स्वर्गमोक्षसुखश्रिये ॥९०॥
 इत्थं श्रीजिनपादपङ्कजरतो धर्मानुरागान्वितः कृत्वा श्रीमुनिपुंगवेषु नितरां वात्सल्यमुद्यन्मतिः।
 सम्प्राप्तः स्वपदं प्रमोदकलितः श्रीविष्णुनामामुनिर्भूयान्मे भवसिन्धुतारणपरः सन्मोक्षसौख्यश्रिये ॥९१॥

इच्छा। आप अपने पाँवों से भूमि माप लीजिए। यह कहकर उसने हाथ में जल लिया और संकल्प कर उसे विष्णुकुमार के हाथ में छोड़ दिया। संकल्प छोड़ते ही उन्होंने पृथ्वी मापना शुरू की। पहला पाँव उन्होंने सुमेरु पर्वत पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर, अब तीसरा पाँव रखने को जगह नहीं। उसे वे कहाँ रखें? उनके इस प्रभाव से सारी पृथ्वी काँप उठी, सब पर्वत चलायमान हो गए समुद्रों ने मर्यादा तोड़ दी, देवों और ग्रहों के विमान एक से एक टकराने लगे और देवगण आश्चर्य के मारे भौचक्के से रह गए। वे सब विष्णुकुमार के पास आए और बलि को बाँधकर बोले-प्रभो, क्षमा कीजिए! क्षमा कीजिए!! यह सब दुष्कर्म इसी पापी का है। यह आपके सामने उपस्थित है। बलि ने मुनिराज के पाँवों में गिरकर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया और अपने दुष्कर्म पर बहुत पश्चाताप किया ॥८०-८४॥

विष्णुकुमार मुनि ने संघ का उपद्रव दूर किया। सबको शान्ति हुई राजा और चारों मंत्री तथा प्रजा के सब लोग बड़ी भक्ति के साथ अकम्पनाचार्य की वन्दना करने को गए। उनके पाँवों में पड़कर राजा और मंत्रियों ने अपना अपराध उनसे क्षमा कराया और उसी दिन से मिथ्या मत छोड़कर सब अहिंसामयी पवित्र जिनशासन के उपासक बने ॥८५-८८॥

देवों ने प्रसन्न होकर विष्णुकुमार की पूजन के लिए तीन बहुत ही सुन्दर स्वर्गीय वीणायें प्रदान की, जिनके द्वारा उनका गुणानुवाद गा-गाकर लोग बहुत पुण्य उत्पन्न करेंगे। जैसा विष्णुकुमार ने वात्सल्य अंग का पालन कर अपने धर्म बन्धुओं के साथ प्रेम का अपूर्व परिचय दिया, उसी प्रकार और भव्य पुरुषों को भी अपने और दूसरों के हित के लिए समय-समय पर दूसरों के दुःखों में शामिल होकर वात्सल्य, उदार प्रेम का परिचय देना उचित है। इस प्रकार जिनभगवान् के परमभक्त विष्णुकुमार ने धर्म प्रेम के वश हो मुनियों का उपसर्ग दूरकर वात्सल्य अंग का पालन किया और पश्चात् ध्यानान्गि

इति कथाकोशे वात्सल्याङ्गे विष्णुकुमारमुनेः कथा समाप्ता ।

१३. श्रीवज्रकुमारमुनेः कथा

प्रणम्य परमात्मानं श्रीजिनं त्रिजगद्गुरुम् । वक्ष्ये प्रभावनाङ्गेऽहं कथां वज्रकुमारजाम् ॥१॥
हस्तिनागपुरे रम्ये बलनाम्नो महीपतेः । पुरोहितोभवत्तस्य गरुडाख्यो विचक्षणः ॥२॥
तत्पुत्रः सोमदत्तोभून्नाना शास्त्रसरित्पतेः । पारगः परमानन्द-दायकः सज्जनादिषु ॥३॥
अहिच्छत्रपुरं गत्वा त्वेकदासौ विशालधीः । सुभूतिं मातुलं प्राह भो माम् विनयान्वितः ॥४॥
राजानं दुर्मुखाख्यं मे दर्शय त्वं कृपापरः । गर्वितेन प्रभुस्तेन दर्शितो नैव तस्य सः ॥५॥
ततोसौ गृहिलो भूत्वा सभायां भूपतेः स्वयम् । गत्वाशीर्वचनं तस्मै दत्वा पुण्यप्रभावतः ॥६॥
नाना शास्त्रप्रवीणत्वं स्वं प्रकाश्यैकहेलया । प्राप्तो मंत्रिपदं दिव्यं स्वशक्तिः शर्मदायिनी ॥७॥
तथाभूतं तमालोक्य सोमदत्तं स मातुलः । सुभूतिर्विधिना तस्मै यज्ञदत्तां सुतां ददौ ॥८॥
एकदा यज्ञदत्ताया गर्भिण्याया हृदोऽभवत् । आम्रपक्वफलास्वादे प्रावृषि स्त्रीस्वभावतः ॥९॥

द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष गए। वे ही विष्णुकुमार मुनिराज मुझे भवसमुद्र से पार कर मोक्ष प्रदान करें ॥८९-९१॥

१३. वज्रकुमार की कथा

संसार के परम गुरु जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं प्रभावना अंग के पालन करने वाले श्री वज्रकुमार मुनि की कथा लिखता हूँ ॥१॥

जिस समय की यह कथा है, उस समय हस्तिनापुर के राजा थे बल । वह राजनीति के अच्छे विद्वान् थे, बड़े तेजस्वी थे और दयालु थे । उनके मंत्री का नाम था गरुड़ । उसका एक पुत्र था । उनका नाम सोमदत्त था । वह सब शास्त्रों का विद्वान् था और सुन्दर भी बहुत था । उसे देखकर सब को बड़ा आनन्द होता था । एक दिन सोमदत्त अपने मामा सुभूति के यहाँ गया, जो कि अहिच्छत्रपुर में रहता था । उसने मामा से विनयपूर्वक कहा-मामाजी, यहाँ के राजा से मिलने की मेरी बहुत उत्कंठा है । कृपाकर आप उनसे मेरी मुलाकात करवा दीजिये न? सुभूति ने अभिमान में आकर अपने महाराज से सोमदत्त की मुलाकात नहीं कराई सोमदत्त को मामा की यह बात बहुत खटकी । आखिर वह स्वयं ही दुर्मुख महाराज के पास गया और मामा का अभिमान नष्ट करने के लिए राजा को अपने पाण्डित्य और प्रतिभाशालिनी बुद्धि का परिचय कराकर स्वयं भी उनका राजमंत्री बन गया । ठीक भी है सबको अपनी ही शक्ति सुख देने वाली होती है ॥२-७॥

सुभूति को अपने भानजे का पाण्डित्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई उसने उसके साथ अपनी यज्ञदत्ता नाम की पुत्री को ब्याह दिया । दोनों दम्पति सुख से रहने लगे । कुछ दिनों बाद यज्ञदत्ता के गर्भ रहा ॥८-९॥